मई 2015

अलख

अंक-05 वर्ष-2015

अलखादेश मासिक पत्रिका

अगला सत्संग
द्वितीय रविवार
14-6-2015

अगला सत्संग
अंतिम रविवार
28-6-2015

अलख अमर विवेचन प्रत्यक्षालय,

सिद्ध झंडी (माहिलपुर) जिला होशियारपुर, पंजाब।

विषय सूची

1. प्रवचन ब्रह्मलीन सदगुरू देव स्वामी अलखानंद जी महाराज 3
2. (कहानी) गुरला स्वर्ग का भोजन 10
3. (प्रेरक प्रसंग) नम्रता 10
4. पूर्ण प्रवचन श्री गुरूदेव जी महाराज 11
5. अनमोल वचन 13
6. House Holder Or Bikkhu 14
7. (कहानी) मृत्यु अटल है 15
8. श्रद्धा भक्ति बढ़ाने वले वचन 16
9. सत्संग सूचनाएं 16

संग्रह चोरी

''यावद् भ्रियते जठर तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं यो भिभन्यते स स्तेनो दण्डमर्हति।।''

अर्थात ''जितने से अपना पेट भरता हो उतने ही पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है, जो उससे अधिक संचय करता है, वह चोर और दण्डनीय है।''

-श्रीमद् भागवत

अलख

श्री सद्गुरु चरण कमलेभ्योनमः

प्रवचन ब्रह्मलीन सद्गुरु देव स्वामी अलखानन्द जी महाराज

भगवद प्रेमी सज्जनों,

संत महापुरुष इस प्रकार कह रहे हैं:

"जब हम जगत में आए थे जगत हंसा हम रोये,
ऐसी करनी कर चलो हम हंसे जग रोये।"

करनी में काया और कर्ण अन्त करण तीन चीजें जो सनावेश होकर तो करनी पड़ती है अर्थात् कोई भी विषय वासना रुप से इन्द्रियों द्वारा पकड़ा जाता है। फिर बुद्धि उसका निर्णय देती है कि मन और बुद्धि मिल कर योजना घड़ते है कि यह कैसे पूरा हो और वह उस वातावरण या वैसे समय में ताक में रहते हैं और सब कुछ सुलभ होने पर कर्म पर बैठते हैं यह कर्म शुभ या अशुभ। शुभ यानि पुण्य और अशुभ यानि पाप। अर्थात् पाप भी होते हैं और पुण्य भी होते हैं और फिर पाप और पुण्य, जीव इसी चक्कर में पड़ा रहता है और पार नहीं होता। एक भाग तो यह हो गया पुण्यों का। दूसरा पुण्य का भाग कुछ और भी है वह यह है कि पुण्य कर्म करता है, पवित्रता को धारण करता है पवित्रता को जीवन में उतारता है, धर्म को धारण करता है धृ धातु से धर्म बना है परन्तु यहां धर्म का तात्पर्य इतना लिया जा रहा है कि जो शास्त्र मर्यादा के अन्तगर्त चलता है यानि जो शास्त्र कहते हैं वैसा करता है और उसके और भी खुलासा रुप में जाए तो क्या? कि परहित खोजता है दूसरों को सुख पहुँचाता है। मनुष्य को भी, जीव जन्तुओं को भी, क्योंकि सब में एक ही परमात्मा बैठा है जो सब को सुख पहुंचाता है किसी का वध नहीं करता, पाप से प्रतिक्षण बचता है तो उसको ध र्मी या धर्म में बरतता कहते हैं तो कहने जा रहे थे कि धर्म में प्रवृत अगर कोई पवित्रता को धारण किए हुए, यज्ञ करता है, कुछ पाठ करता है, और अनेक प्रकार से कुछ शुभ करता है, और ऐसा प्राणी बदले में चाहता कुछ नहीं उसे दुनियां की कोई चीज़ नहीं चाहिए पर शुभ में लगा तो उसका क्या होगा? उसका फिर यह होगा कि उसको संत मिलेंगें, उसे फिर सन्तों के वचन समझ में आयेंगे और जिस का फिर पुण्यों का पुंज (भण्डार) नहीं वह चाहे आकर बैठता रहे, चाहे जीवन भर पाठ करते रहे पर उसको कुछ बात समझ में नहीं आती उसको बुद्धि का कुंठित या थोथा कह लो या यूं कहो कि सन्तों के भी वचन समझ में नहीं आते शास्त्र से तो वह लेगा ही क्या? क्योंकि शास्त्रों में तो पहले ही ताला लगा है परन्तु इस कपाट को, बन्द ताले को खोले कौन?

आदि गुरु शंकराचार्य जो एक जगह प्रश्न करते हैं?

मूकोअस्ति कः ? और वधिरश्च कः ?

और स्वयं उत्तर भी देते है :- **वक्तं नः युक्तं समय समर्था।। तथ्यं सुपथ्यं नैं श्रणोति वाक्यं।।** अर्थात् समय पर उचित बात को, अच्छी बात को कहने में समर्थ नहीं, कह नहीं सकता जो सुपथ्य कहना चाहिए वह ज्यों का त्यों कह नहीं पाता अर्थात् उचित प्रश्न कर नहीं पाता या कोई उचित उत्तर दे नहीं पाता। अर्थात् ठीक-ठीक सही बात को दूसरों तक पहुंचा नहीं पाता वह गूंगा ही है। तो दूसरा प्रश्न कि बहरा कौन है? तो उसके बारे में स्वयं उत्तर देते हैं जो सुन्दर तथ्य की, सुपथ की, यानि परिपूर्ण मार्ग, तथ्य यानि सब का सार। जो

तथ्य सुपथ की बात को समझ नहीं सकता वह दुनियां में कान होते हुए बहरा ही है। क्योंकि या तो वह सुनने का प्रयत्न नहीं करता, जरा सी भी किसी बाधा आने पर रुक जाता है और समझने तक का मन नहीं बनता। तो आवश्यकता इस बात की रहती है कि यदि पुण्य पुंज हों, तो संतों के वचन समझ में आते है, पुण्य पुंज हों तो संतों की संगत में बैठ सकता है। सारे लोग नहीं बैठ सकते और उस में भी आकर जब संतों की संगत में बैठता है तो शब्द बाण लगते हैं जो कि हृदय के अज्ञान, अन्धकार, अविवेक को उसी समय बेधते अर्थात् जलाते, हटाते चले जाते है इसलिए तो कहा है-

संत समागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय,
सुत दारा और लक्ष्मी पापी के भी होय।।

तो शब्द बाण जिन से हृदय की पीड़ा, मन की वेदना, मन के कांटे हटते चले जाते हैं- इसलिए सत्संग की महिमा अपार है, पर है सत्संग करने पर। जो सत्संग के प्रेमी है कभी सत्संग नहीं छोड़ते, वह समय पर इस बात को अनुभव करते है। तो उन शब्दी बाणों को लगने देवे अर्थात् सुन जाए, सुन कर विचार कर जाए तो उसका सुधार निश्चित है। मात्र पढ़ने से इसका वास्तविक लाभ न हो सकेगा। जैसे रोटी रोटी कहने से नहीं, मात्र खाने से। ऐसे ही सत्संग करने से होगा। जिस के चित में यह ख्याल बन गया कि मेरे श्री गुरु जी महाराज जी मेरे कल्याणार्थ जो कुछ भी करते हैं मेरा इस में परम कल्याण है, परन्तु मेरी यह बात पूर्ण गुरु मिलने पर ही लागू होनी चाहिए।

एक बार श्री गुरु महाराज जी कहीं से सत्संग करके लौट रहे थे साथ में उनका आज्ञाकारी सेवक था, आज्ञाकारी अर्थात् जो गुरु वचन को ज्यों के त्यों मानता है लम्बे सफर में दोपहर के समय कहीं भोजन और विश्राम के लिए ठहर लेने का विचार किया सनिकटी नगर से कुछ राशन आदि बांध एक पेड़ के नीचे पानी के निकट बड़े प्रेम पूर्वक भोजन बनाया और किया। त्रिकालदर्शी श्री गुरु जी महाराज जी शिष्य से इस प्रकार आदेश दिया कि तुम्हें आज्ञा है कि तुम सो जाओ साथ ही कहा आज्ञा है क्योंकि ऐसा विधान तो नहीं कि श्री गुरु महाराज जी के उठने के बाद उठे।

उठे लखन मुनि विगत सुनि अरुण शिखा कान,
गुरु से पहले जगत पति जागें राम सुजान।।

परन्तु अब आज्ञा शब्द आया उस में आगे और कुछ आना नहीं शिष्य तुरन्त वैसा ही करे, इसमें कल्याण है आज्ञा पाते ही शिष्य सो गया श्री गुरु महाराज जी यद्यपि थके मादे भी थे परन्तु सावधान जाग्रित रहे। शिष्य के पूरी तरह सोते ही एक सांप आया तब श्री गुरु महाराज जी ने सांप की आत्मा से बात की कि ठहरो। कहो क्या बात है। सांप कहने लगा इस ने कभी मेरा खून पी रखा है। कहने लगे खून ही तो पीना है। कहने लगा हां। कोई बात नहीं ठहरो यहीं। गुरु महाराज जी सेवक की छाती पर बैठ गए कांच का टुकड़ा या नूकीला कुछ लिया कटोरा पास रखा गले का खून निकाला जैसे छाती पर विराजमान हुए और जरा सी आंख खोल कर शिष्य ने देखा कि गुरु महाराज जी जो हैं और फिर आँखें ज्यों कि त्यों बन्द कर ली। गले से खून निकाला गीली मिट्टी पहले से ही पास में रख ली थी। श्री गुरु महाराज जी ने जितना खून का कटोरा चाहिए था भर लिया। उसके पश्चात् श्री गुरु महाराज जी तो सो गए और उसके बाद में उठकर हरिगुण गाते और भजन सुमिरण करते प्रस्थान कर गए। कुछ दिनों बाद गुरु महाराज जी ने शिष्य से पूछा कि क्या तुम्हें पता है कि तेरे गले का खून निकाला था। सेवक ने उत्तर दिया जी मेरे स्वामी पता है। तो कहते है तूने आंख खोल कर

तो देखा था पर पूछा तो कुछ नहीं। कहने लगा श्री गुरु महाराज जी इस में पूछना क्या था मुझे आप की कृपा से एक अटल विश्वास, दृढ़ विश्वास है कि मेरे गुरु महाराज जी मेरे लिए जो करेंगे अच्छा ही करेंगे, मेरा इस में भला ही है।

हे नाथ! आप की कृपा से ऐसा विश्वास सदैव-सदैव के लिए बना ही रहे मेरी आप के चरणों में यहीं प्रार्थना है। मुझे शंका ही नहीं हुई कि खून क्यों निकाला या क्यों किया जो किया सो ठीक किया तो विश्वास इसको कहते है, अटल विश्वास अटल मतलब जो न टले। मन मारना भी इसी को कहते हैं। जहां मन की न चले, वचन चले तो जो गुरु वचन में उतरता है उसका फिर मन मरने में विलम्ब नहीं होता, देरी नहीं लगती पर जो बीच में हिक्मत हुज्जत लड़ाता है तो उसका मन मरता नहीं, मन फैलता है-

मन के मते न चालिये मन के मते अनेक,
जो मन पर असवार है सो तो साधु कोई एक।।
मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
कहि कबीर प्रभू पाईये मन ही के प्रतीत।।
मन लोभी मन लालची, यह मन भूत पिशाच।
यह मन हरि को जात है जब हरि भजे सुजात।।
मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोई साध।
जो माने गुरु वचन को ताका मता अगाध।।

अगाध मतलब पारावार नहीं बहुत गहन मति है। तब कहने जा रहे थे कि सेवक पूर्ण रुप से आज्ञा माने-

गुरु के वचन प्रतीत न जोहि।
स्पनेहु, सो सुख सुगति न लेहि।।

जो वचन नहीं मानता स्वपन में भी उसको शुभ गति यानि सुख नहीं होता, उसका मन नहीं मरता। उसका कहीं भी कल्याण नहीं।

गुरु का वचन उल्लांघ कर जो शिष्य कहीं भी जाये,
जहां जाये तहां काल है कहि कबीर समझाये।।
गुरु के शब्द मन्त्र मन मान।।

गुरु वाणी में ऐसे कहना पड़ा कि गुरु के वचन मन्त्र मन मान। यदि कोई दुनियां में मन्त्र है तो गुरु का वचन है। जो आज्ञा मिली सो कर उसी में कल्याण है।

तो तब अगली बात कहने जा रहे थे- दो बातों में से क्या कि एक तो पुण्य कर्म, एक पाप कर्म। पुण्य कर्म में से एक तो मात्र शुभ कर्म फल के लिए और एक मात्र शुभ कर्म के लिए और बदले में कुछ नहीं चाहिए उसका पुण्य कर्म इक्ठठ्ा होता है तो संत मिलते है या यूं कहो कि उसे संतों की बात समझ में आती है वरना समझ में नहीं आती तो हमें दोनों प्रकार के पुण्य कर्म तो करना ही चाहिए यह तो हो गई बात क्योंकि पुण्य कर्म के बिना या शुभ कर्म के बिना कोई काम सिरे नहीं चढ़ता। अब आवश्यकता इस बात ही की है कि उन में से जिन को पुण्य कर्म के बदले में चाहिए भी कुछ नहीं और वह लोग सच्ची संगत के मुतलाशी है।

जेहड़े प्रेमी रब्ब दे ने,
दिने राती पये तकदे कित्थों पूरे गुरु लभदे ने।।

वह सत्संग में बैठ अपने घट में, अपने हृदय में बुद्धि की, मन की गांठें खोलते हैं ज्ञान के उजाले से सत्त के प्रकाश के नीचे जो गांठें खोलते हैं जड़ चेतन की ग्रन्थियों को जो खोलते हैं..... जो कि बड़ी सूक्ष्म रूप से है बार-बार विचार करते हैं कि हृदय को बार-बार आन्नद से विभोर करते हैं भगवान् के तरह-तरह के गुणानवाद सुनते हैं, भगवान् के रूप की महिमा को सुनते है ताकि भीतर रूप के बारे में प्रबल इच्छा जगे, जब भगवान् के नाम के बारे में सुनते हैं कि हजारों नामों के समान एक नाम।

हजारों नाम भी उस एक नाम की बराबरी नहीं कर पाते और तब फिर वह यह समझते हैं कि भगवान् के नाम के बराबर और कोई दूसरी साधना नहीं उस से बढ़कर तो होगी ही क्या? क्यों नहीं, क्योंकि यहां एक तो शीतल एक उष्ण यानि सूर्य-चन्द्रमा कह लो, गर्म-सर्द करके कह लो वह दोनों से बराबर शरीर चलता है, शीत भी जरुर चाहिए और उष्ण भी जरुर चाहिउ जो ठंडा हो गया यानि, तेज खत्म हो गया, उष्ण तत्व खत्म हुआ तो मृत्यु हो गई। और वह एक का नहीं सारे विश्व का, सो जीव-जन्तुओं का, सारे देवताओं का, सारे मनुष्यों का भेद है। वह जो भेद है उसको जो अपने भीतर हृदय में स्थान देता है मतलब हृदय से प्रेम करता है प्रेम करने का अर्थ उस के समान किसी और दूसरे काम को महत्त्व नहीं देता तो यह प्रेम करना है तो सच्चे नाम की साधना को बार-बार करता रहता है-

धरति उल्ट आकाश में जाई।
चींटी के मुख में हाथी समाई।।

जो मन चित्त धरती पर रहता था वह नाम का संग पाकर ऊँचें लोकों अर्थात् शून्य शिखर में जाने लगा।

जो दम गाफिल सो दम काफिर।।

जो स्वांस गाफिल गया, बिना सुमिरन के गया वह स्वांस का समय व्यर्थ ही गया। जो ऐसा सोचता है कि वह यथा शीघ्र प्राणों पर विजय पा लेता है। क्या यह ज्ञात है कि यदि प्राण हिले तो मन हिलेगा और यदि मन हिला तो प्राण हिलेंगे। मन शान्त होगा तो प्राण शान्त होंगे अगर प्राण शान्त हो जाए तो मन भी शान्त होगा। मन की फुरना मिटेगी। तो यदि फिर भी प्राणों को कई कामों में लगायेंगे तो मन और फैलेगा जरा गौर से इस बात को सुनो और समझो अगर अपने मन को प्राणों को, काया को और कई कामों में लगायेंगे तो कभी यह किया, कभी वह किया, कभी और कुछ किया तो मन फैलेगा, अनेक वचन उच्चारण करेगा तो मन फैलेगा क्योंकि अनेक कुछ में तो हम खुद भी लगा रहे है कभी इसमें, कभी उसमें तो एक कैसे हो सके, एकाग्र कैसे हो तो इस कारण से भगवान् कृष्ण परम धाम कह रहे है गीता (अ.15 श.6) खोल कर देखना चाहिए-

न तदभासते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यदगत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम् ।।

कहते हैं सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, बिजली वह वहां पर नहीं पहुंच पाती इनके न होने पर भी प्रकाश है। टीकाकार ने इस बात को ढांपने की बड़ी कोशिश की है क्योंकि टीकाकार को तो खुद को गुरु नहीं मिला हुआ उसने पढ़ा है कि विद्या पढ़ी है पड़ कर श्लोकों का अर्थ किया है परन्तु सद्गुरु की प्राप्ति के बिना स्पष्टीकरण नहीं कर सक रहा। बात को छुपाना चाहता है, तब खैर कहना चाहते थे कि स्वयं प्रकाश यानि बिना तेल, बिना घी, बिना बत्ती के अपने आप उजाला है-

घट में ही उजियारा साधो, घट ही में उजियारा रे।
पास बसै और नज़र ना आवै, बाहर फिरत गंवारा रे।।

गंवार करके कहा। तेरे में उजाला बसता है पर नज़र नहीं आता क्योंकि मन गंवार बन कर बाहर घूमता है। बाहर फिरत गंवारा रे। बिन सद्गुरु के भेद न जाने कोटि यत्न कर हारा रे।। और बिना गुरु के भेद को समझ नहीं पाता लाख यत्न करें और तब खैर कहने जा रहे थे कि एक तो परम धाम और तरह से भी कहा गया है। गीता में एक जगह परम धाम और तरह से भी कहा गया।

अव्यक्तोक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

अव्योक्तक्षर-अव्यक्त जो बोलने में नहीं आता अक्षर यानि जिसका कभी नाश नहीं होता। कहते जो उस को प्राप्त कर लेता है वह परम गति को समझ लेता है। न निवर्तन्ते भाव कि वह वापस नहीं

लौटता उसका आवागमन खत्म हो गया हृदय की अशांन्ति, जलन, खत्म हो गई, झगड़ा मिट गया।

राड़ मिटी आत्मा दर्शाना,
प्रकटे ज्ञान जोत तब पाना।।

ठीक एक ही बात है। तो आश्यकता इस बात की रहती है कि भीतर हमारे भगवान् का सच्चा नाम है, भगवान् की सच्ची जोत है वह रूप है पर खेंचना चाहो तो खेंच नहीं सकते। अगर इन आंखों से देखना चाहो तो नहीं है भीतर देखो तो है, बाहर देखो तो दृष्टि दिखाई देती है।

राजा धर्मदास जी जब गुरु महाराज जी (सन्त कबीर) की शरण में गए तो सत्संग सुना सत्संग सुनने पर कहते हैं-

हो गुरु पाइयां लागूं सद्गुरु पइयां
लागूं नाम लखवाए दीजोरे।
जन्म-जन्म का सोया मेरा मनवा,
शब्दन मार जगाये दीजोरे।।

कहते हैं हे गुरु महाराज जी मैं आप की शरणागत हूँ, पइयां लागूं, पांव में पड़ता हूँ- हे गुरु मुझे नाम लखाओ- क्या है? लखाओ मतलब दिखाओ। आप कहते है फोटो नहीं खेंची जा सकती, आकार प्रकार नहीं बनाया जा सकता, पर है। यही तो बात है।

नाम रूप दोऊ अकथ कहानी,
समझत सुखद न परत वखानी।।

अकथ यानि कहने में नहीं आता पर है, जाना तब कह रहा है। तो कहते हे गुरु महाराज जी घट में नाम है पर मैं जानता नहीं। आगे कहते हैं-

विष की लहर उठत घट भीतर,
अमृत बूंद चुवाय दीजो रे।।

हे गुरु महाराज जी मन में विषयों की लहर उठती है, उसकी जगह मन में अमृत की बूंद चुआ दो। ताकि यह मन शांन्त हो जाए। एक बात धर्मदास जी सच्च कहते है कि हे गुरु महाराज जी जब मैं आंख बन्द करता हूं तो अन्धेरा ही अन्धेरा है जब आंख खोलता हूँ तो संसार दिखाई देता है।

घट अंधियारा नैन नहीं सूझे,
ज्ञान की जोत जगाये दीजो रे।।
गुरु पईयां लागूं नाम लखवाय दीजो रे।।
जन्म-जन्म का सोया मेरा मनवा,
शब्दन मार जगाये दीजो रे।।
गुरु पईयां लागूं .....

हे गुरु महाराज जी जन्म-जन्म का यह मन सोया है इसको जगा दो न मालूम कितने युगान युग से सोया है। अब की खेप निभाये दीजो रे।। हे गुरु महाराज जी अब इस जन्म में निभादो कृपा करके बांह पकड़ के भी निभा दो, पार लगा दो।

गहरी नदियां अगम बहे धरवा,
खेई के पार लगाये दीजो रे।।
धर्मदास की अर्ज गुसाई,
अब की खेप निभाय दीजो रे।।
गुरु पइयां लागूं नाम.....

तब कहने जा रहे थे कि नाम लेने या देने की चीज़ नहीं है। जो नाम लेने देने के हैं वह सारे के सारे बनावटी हैं, रखे गए हैं, सिफाती हैं, तारीफी हैं। जो है कल्पित किए हैं, खड़े किए हैं- कभी भी किसी ने किए, महापुरुषों ने भी किए ऐसी कोई बात नहीं है।

लिंग थाप करि विधि वत पूजा,
शिव समान मोहि और न दूजा।।गो-गोचर
यहां लगि मन जाई।
सो सब जानहुं माया भाई।।

माया के परपंच रहने से क्या होता है, जीव आगे नहीं बढ़ेगा, बस यहीं तक चक्कर काटेगा। इस कारण से तब कहने जा रहे थे कि वास्तविक ध्यान, भगवान् का सच्चा नाम, सब के घट में वह जोत स्वरूप परमात्मा एक रस, एक टक बैठा, साक्षात् इस का होना ही ध्यान है।

श्री राम जी ने ऐसा किया, क्यों किया? जो बनाया सो बिगड़ेगा, कोई बनाये एक बात याद रखना

क्योंकि कुछ मांग थी। मांगों तक के लिए यह बाहरी साधन कुछ चल भी सक रहे हैं। लेकिन जब भीतर लौटता है तो यह माया प्रतीत होती है। है भी माया। क्या मांग लिया उससे, माया।

वह भी माया का परपंच जो कुछ भी है सब माया, सब माया।।

गो–गोचर यहां लगि मन जाई।
सो सब जानहुं माया भाई।।

माया के परपंच रहने से क्या होता है, जीव आगे नहीं बढ़ेगा, बस यहीं तक चक्कर काटेगा। इस कारण से तब कहने जा रहे थे कि वास्तविक ध्यान, भगवान् का सच्चा नाम, सब के घट में वह जोत स्वरूप परमात्मा एक रस, एक टक बैठा, साक्षात् इस का होना ही ध्यान है।बातों से काम नहीं चलेगा क्योंकि वैसे तो जितनी प्रकार के भी नाम हैं गुणवाचक, तारीफी, सिफाती नाम है। इन नामों से भगवान् के सच्चे नाम की, अनादि नाम को महिमा का फल हज़ार गुणा है– जैसे राम–राम हज़ार बार कहा पर सच्चा नाम एक बार तो उतना ही फल मिल गया बहुत बड़ा महत्त्व हुआ। कहां दस हजार का, कहां दस बार, कहां एक लाख, कहां एक बार, जरा विचार करके देखो तो इस प्रकार रामायण में आता है–

सहस नाम सम सुन शिव वानी।
जप जिय प्रिय संग भवानी।।

हज़ारों नामों के समान एक ही नाम। पार्वती जी ने जब ऐसा सुना तो चकित रह गई। पार्वती जी ने भगवान् शंकर जी से पूछा कि आपने मुझे यह बताया क्यों नहीं? भगवान् शंकर कहते तुम ने कभी पूछा ही नहीं। कहती मैं पूछती कैसे? तो हंस कर कहने लगे तभी तो कहा है–

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई।।

तो कहते है कि यह तो सत्संग की कमी के कारण है। बिना सत्संग के विवेक जाग्रत नहीं होता और सत्संग भी राम की, प्रभु की कृपा बिना उपलब्ध नहीं होता। तो भगवान् के सच्चे नाम का हजार गुणा महत्त्व उस से भी हजार (1000X1000) कर लो। यानि दस लाख जितना फल हुआ तो इस कारण से कहने जा रहे थे कि जल्दी झगड़ा खत्म होता है।

कलियुग सम युग आन नहीं जो नरकर विश्वास।
गाये नाम गुण गण विमल नर तर भव बिन प्रयास।।

पर इस में से भी कोई ऊंची नीची बात नहीं, गरीब अमीर की भी कुछ बात नहीं, जाति–पाति की भी कोई बात नहीं। किसी भी जाति में पैदा हुए पर फरक क्या? हे जीव! क्या तेरे हृदय में सच्चे नाम की लग्न है? अनादि नाम का प्रेम है? वास्तविक नाम के बारे तड़प है?

विद्या विनय सपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि,
शुनि चैव श्रपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

विद्या– अर्थात् भगवान् का वह सच्चा नाम जिस से अनेकानेक बार सृष्टियों की रचनायें हुई, पालन होता है, संहार होता है वह सच्चा नाम जिस में कोई अक्षर, स्वर, व्यंजन नहीं है। परन्तु सब के (हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई) विश्व भर के मत–मातान्तरों, स्त्री–पुरुष, वृद्ध, बालक और चौरासी के सब प्रकार के नाना जीव जन्तु फिर वह चाहे जल में रहने वाले हों, चाहे पृथ्वी पर रेंगने वाले हो, चाहे आकाश में उड़ने वाले हों, हे प्राणी फिर सब में वह एक नाम, एक शब्द क्या है? उसे खोजना, पूछना, समझना चाहिए। या उसे जानने का नाम वेद है, ज्ञान है। उसमें स्थित होने की दशा ज्ञान है। सब में मात्र उसको देखना सम–दर्शन है। उसको जाने बिना, नाना प्रकार के भ्रमों में पड़े हुए आत्मा–आत्मा चिल्लाने से कुछ अर्थ सिद्ध न होगा। न मेर–तेर, भेद–भाव समाप्त होंगे न भ्रम। क्योंकि एक जो सम है–

एको सिमरो नानका जल थल रिहो समाये।
दूजा काहे सिमरिये जो जामे ते मर जाये।।

शास्त्र–ग्रन्थ एक कह रहे हैं, अनेकों नामों की तो

गुंजाईश ही कहां है। दो भी नहीं। मात्र एक नाम वह भी जो जीव मां के गर्भ में सुमरन करता था, जो जल में रहने वाली मछली और कछुए में भी समान रूप से है। थल में रहने वाले गाय, कुत्ते, हाथी में भी समान्यरूप से है, ब्राह्मण और चंडाल, विद्वान और अनपढ़, राजा और कंगाल में सभी समानरूप से है। फिर चेता रहे हैं कि हे प्राणी! ऐसे नाम का, ऐसे रूप का, साक्षात्कार विना भेदी के न होगा और न ही हृदय की गांठ खुलेगी। नाम प्रभु का बड़ प्रतापी। गुरुमुख जाने घट अन्तरजापी।।

भगवान् के सच्चे नाम का ही प्रताप है जो ज्यों का त्यों एक समान सब में ही समाया हुआ है कोई भेद-भाव नहीं रखा अनादि काल से एक है और आगे भी एक रहेगा। और पावन नाम से भगवान् वश में होते हैं-**सुमर पवन सुत पावन नामू । अपने वश करि राखेऊ रामू ।।**

जिस नाम ने राम को भी वश में किया है किस से? पावन नाम से सुमिरण करके। श्री रा म जी भी भक्त के ऋणि हो गए क्योंकि उन के सच्चे नाम के सुमिरण में लगा है। जो नाम को छोड़ता ही नहीं तो अगर हृदय में उन के नाम के बारे में प्रेम है, नाम के लिए स्थान है तो तब मुबारक है। ऊंचे कुल में ऊंची जाति में जन्म ले भी लिया, मगर ईश्वर को जानने की, ईश्वर के दर्शन की इच्छा नहीं है तो बाहर की बातों से तो खास फर्क पड़ने का नहीं और लोग जिस को बहुत छोटा कुल कहते है ऐसा शरीर धारण करके आया है पर प्रभु भक्ति से प्रेम है, नाम सुमिरण में जुट गया है और उस के जैसा दूसरा कोइ भाग्यशाली नहीं। समाज कुछ कहता रहे, लोग कुछ कहते रहे फर्क पड़ना नहीं।

जात पात पूछे नहीं कोय।
हरि को भजे सो हरि का होये।।

तो कहने जा रहे थे कि बड़ी उदारता से प्रभु के प्रेम में प्रीती जोड़ना। प्रभु के नाम में अत्यन्त श्रद्धा और एक स्वांस खाली न चला जाए इसकी चिन्ता होनी चाहिए।

चिन्ता तो सत्तनाम की और न चितवै दास।
जो कुछ चितवे नाम बिन सोई काल की फांस।।

चिन्ता क्या करे नाम सुमिरण कैसे हो? नाम की कमाई कैसी हो? जिस के हृदय में बार-बार यही चिन्ता उठती है और वह दास है। परन्तु नाम के बिना जो कुछ भी चिन्तन करना है, जो भी तराजू तोलता है, जो कुछ भी दुनिया के चक्कर काटती है, क्या-क्या बनने की सोचता है तो कहते वह सब काल की फांस यानि काल का फैलाव है, काल के फन्दे में ही आयेगा। काल के मुख में काल की गोद में जा रहा है। इस कारण से हे जीव! बच। बचने का क्या तरीका है? पाप बगैरा तो कोई खास बात नहीं नाम के आगे। पर नाम पूर्ण रूप से चाहिये। ऐसा न हो कि थोड़ा सा नाम जप लिया बस हो गई बात। नहीं ऐसा नहीं नाम का

मन तन नाम रत्ते इक रंग।
सदा बसे पारब्रह्म के संग।।

नाम जो रत्ति एक है पाप जो रत्ति हजार।
रंचक घट में संचरै जार करे सब छार।।

संचरै कैसे? अब इस बात को कहना कैसे संचरे नाम? मन के अनगिनत हिस्से हैं उनको वृतियां करके कहते है जैसे पारा है पारा अगर एक बूंद पृथ्वी पर गिर गया यदि उसे उठाना चाहो तो दस और टुकड़े हो जायेंगें। भाव कि पारा विखरता ही जायेगा तो इसी प्रकार से जैसे पारा समेटा नहीं जाता उसी प्रकार मन समेटा नहीं जाता। मन यहां से समेटना चाहोगे और बिखरता है क्योंकि मन वृतियां रूप में बिखरता है पर जो नाम सुमिरण में लगता है तो उसका मन कुंठित हो जाता है, सो जाता है, चारा नहीं चलता पांचों प्राण, पाँचों उप प्राण, लिया

क्रमशः....

❖❖❖❖❖

गुरला-स्वर्ग का भोजन

एक बार की बात है। किसी मठ में नस्सरूदीन बन गया सन्यासी। उसने मठ के बाकी सन्यासियों के सुधार हेतु काफी श्रम भी किया। एक बार मठ के भंडारी (रसोईया) ने मठाध्यक्ष से पूछा, ''महाराज। बताएं आज भोजन में क्या बनाऊं?'' इससे पहले कि मठाध्यक्ष कुछ कहते, पास बैठा नस्सरूदीन बोल उठा,''महाराज! यदि आज्ञा हो तो आज सबको गुरला खिलाया जाए। और बनाऊंगा भी मैं। मठाध्यक्ष ने बात मान ली।

बस फिर क्या था। नस्सरूदीन ने सब सन्यासी इक्ट्ठे किये और कहा, ''देखो मित्रो। आज तुम्हें वह भोजन मिलेगा जो स्वर्ग के देवता करते हैं परन्तु शर्त यही है कि उसे तैयार करने हेतु सफाई की बहुत आवश्यक्ता रहती है।''''पर वह भोजन है क्या?'' एक सन्यासी ने पूछा। नस्सरूदीन ने कहा,''उसे कहते हैं गुरला। जिसे पकाने के साथ साथ शुद्धता भी पूरी चाहिए। नहीं तो यह पकता नहीं।'' सन्यासी एक दूसरे का मुंह देखते देखते लग गए सफाई में। और सफाई भी पूरे दिल से। देखते-देखते रात आ गई और मठ का कोना-2 चमक चुका था।

इधर सन्यासियों के पेट में भी चूहे दौड़ रहे थे कि कब गुरला बनाना शुरू करेगा नस्सरूदीन। जब काम काज से थके सन्यासियों ने नस्सरूदीन को खोजना चाहा कि वो भोजन बनाए तो देखा कि वह तो गूढ़ निद्रा में लीन था। किसी ने जगाकर उसे कहा, ''भाई सब कुछ साफ कर दिया गया है। अब तुम गुरला बना दो।'' इस पर नस्सरूदीन ने पासा पलटा और कहा, ''तो ठीक है सब सो जाओ। क्योंकि गुरला का अर्थ है उपवास।'' इतना सुनते ही सब ने नस्सरूदीन को घेर लिया।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

नम्रता

महान दर्शनिक कनफ्यूशियस मृत्यु शैय्या पर थे।उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा- बेटो, जरा मेरे मुंह में झांककर तो देखो, जीभ है या नहीं।

शिष्य हैरान हुए। गुरू की आज्ञा के अनुसार उन्होंने देखकर कहा-'हां गुरूदेव, जीभ है।'

कनफ्यूशियस ने पूछा- दांत हैं?'

शिष्यों ने कहा दांत तो एक भी नही है।'

गुरू ने कहा-'कहां गये दाँत? जीभ के बाद उनका जन्म हुआ था। पहले ही कैसे चले गये दांत?'

शिष्य क्या कहते? चुप खडे रहे और आपस में एक दूसरे का मुंह देखने लगे। शायद शोच रहे हों कि कहीं गुरू पागल तो नहीं हो गये।

तब कनफ्यूशियस ने कहा-'सुनो, जीभ है कोमल, नम्र। इसलिए वह अब भी मौजूद है। दाँत थे क्रूर, कठोर। इसलिए वे टूट गये।'

❖❖❖❖❖❖

पूर्ण प्रवचन श्री गुरुदेव जी महाराज

हरि हृदय के बीच बसे, जीव ढूंढे जग माहिं।
जब लग पूर्ण गुरु नाहि, तब लग सूझत नाहिं।।
भेदी मिलन अति कठिन है, भेद कठिन कहु नाहि।
जब पूर्ण सद्गुरु मिलें, पल में दर्श कराहिं।।

प्रिय भगवद् प्रेमी सज्जनों,

एक बात यदि ध्यानपूर्वक समझने की ओर चला जाए तो हर श्वास जो आ रहा है और जो श्वास विघटित हो गया वह एक घोषणा कर रहा है। वह घोषणा इतनी धीमी और सूक्ष्म है वो जीव सुन नहीं पा रहा है। हर श्वास उस दिन की ओर जागृति दे रहा है जिस दिन यह शरीर तो संसार में रहेगा पर उसमें श्वासों का आना जाना बंद हो जाएगा और फिर इस शरीर का मुल्य समाप्त हो जाएगा। उस दिन के आने से पहले जीव का इस लक्ष्य को समझना अति अनिवार्य है कि उससे पहले जीव जाग जाए। जागने से पहले उस नींद का ज्ञान नहीं कि वह नींद क्या है? वह नींद इन आँखों की नहीं है। यह वो नींद है जिसमें जीव जन्म जन्मान्तरों से सोया हुआ है परन्तु बेखबर है। यह मनुष्य का शरीर जीव को सिर्फ, ईश्वर की खोज के लिए मिला परन्तु जीव इस खोज को भुलाकर कुछ अन्य निरर्थक कार्यो में लग पड़ा। उसी खोज का भूलना नींद बताया गया। महापुरुषों ने संदेश में फरमाया भी है-

आया था किस काम को लग बैठा किस काम।
सुरत संभाल्यो गाफिला तू अपना आप पहचान।।

जिन कार्यो में लगकर मनुष्य समय नष्ट कर रहा है उन कार्यो के लिए यह मनुष्य का शरीर नहीं मिला। क्योंकि शास्त्रों में इस मनुष्य शरीर को देव दुर्लभ बताया गया है। कुछ ऐसा कार्य है जो केवल मनुष्य के शरीर में ही किया जा सकता है और किसी शरीर में वह कार्य संभव नहीं है। मनुष्य शरीर में केवल एक ही कार्य है जो केवल इस शरीर में किया जा सकता है और किसी अन्य शरीर में नहीं किया जा सकता। चाहे वह देवी-देवता हो चाहे पितर या गंधर्व। वह कार्य है सुरत का शब्द संग मेल और इसी कार्य के लिए सिर्फ मनुष्य का शरीर सक्षम है और इस कार्य के बिना जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

लख चौरासी जून में, मानुष देह प्रधान।
बिना भजन भगवान् के पड़ी अकारथ जान।।

शास्त्र पुकार-2 कर समझा रहे हैं परन्तु मदहोशी में रहकर जीव समझना नहीं चाहता कि लक्ष्य क्या है, 84 लाख योनियों में प्रधान योनि है मनुष्य का शरीर। प्रधान अर्थात् सर्वोत्तम परन्तु जब तक जीव अपने लक्ष्य पर नहीं तब तक इस योनि का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि हे जीव! तूं भजन करने को आया भगवान् का परन्तु बिना भजन के ये व्यर्थ जा रही है। परन्तु हे जीव! एक बात याद रहे कि यह बात सही है भजन के बिना कल्याण नहीं परन्तु यह खोज भी अनिवार्य है जिस भजन से परमकल्याण हो वो भजन क्या है? क्योंकि सारा कल्याण इसी बात में है कि जिस बीमारी का ईलाज करना उसकी सही दवाई क्या? क्योंकि अगर दवाई गल्त हो तो कभी भी रोग का नाश नहीं हो सकता। भजन एवं भक्ति कोई दो बातें नहीं एक ही अर्थ है। परमात्मा का भजन वो दवाई है जिसके द्वारा जीव की आवागमन की बीमारी का नाश होता है।

भेदी मिलन अति कठिन है, भेद कठिन कछु नाहिं।

भेदी का मिला अर्थात् रहस्य को बताने वाला। जिस प्रकार औषधालय में सभी रोगों की दवाई उपलब्ध होती है परन्तु बिना वैद के कोई बता नहीं सकता कि सही औषधि कौन सी है। अगर वैद न बताए तो औषधि चाहे औषधालय में पड़ी हो परन्तु रोगी उस औषधि द्वारा बिना वैद के स्वंय ही अपना उपचार

नहीं कर सकता। ठीक उसी प्रकार हे जीव! तेरे शरीर रूपी औषधालय में ही तेरे आवागमन के रोग का उपचार करने वाली औषधि पड़ी है जिसका नाम सुमिरण है। उस सुमिरण रूपी औषधि की पहचान एंव ज्ञान कराने वाले वैध को ब्रह्मज्ञानी गुरु महाराज कहा जाता है। औषधि तो तेरे शरीर रूपी औषधालय में पड़ी हुई है परन्तु जब तक वैध रूपी गुरुमहाराज नहीं तब तक उपचार संभव नही है। सुमिरण तो घट के भीतर गुप्त है परन्तु जीव बिना गुरु महाराज के साक्षात्कार कर नहीं पाता। दुर्लभ गुरु महाराज का मिलन है न कि सुमिरण दुर्लभ है। क्योंकि जिस दिन परिपूर्ण परमब्रह्मज्ञानी गुरु महाराज का मेल हुआ और संग होते ही जीव आज्ञाकारिता में शरणागत हुआ इस दिन जीव कृपा प्रसाद में उन महापुरुष द्वारा तत्काल ही उस अविनाशी एंव दिव्य प्रकाश को अपने ही घट में आर्शीवाद रूप में प्राप्त कर लेता है। बात पढ़ने में समझने में असंभव सी प्रतीत होती है परन्तु जब इसी असंभवता को जीव प्रकटता में देखता है उस समय सभी संश्यों का नाश होता और प्रेम का अर्थ समझ पाता है। सुमिरण कोई रटन, जपन, मन्त्र या बंधन नहीं जिस में बंध कर जीव स्वतन्त्र हो सके क्योंकि उपरोक्त सभी क्रियाएं बंध न है और जो खुद बंधन में हैं वो जीव को किन बंध नों से आज़ाद कर सकेगा। जो कार्य करने से इन्द्रियां क्रियामान एवं जागृत अवस्था में हो वह कार्य न तो सुमिरण है और ना ही उसे भक्ति समझा जा सकता है। उपरोक्त क्रियाओं को करना जीव के लिए भक्ति नहीं बल्कि भक्ति का भ्रम है।

सुमिरण एक बंधन नहीं बल्कि एक स्वतन्त्रता है। जिसको कृपास्वरूप में पाकर जीव सभी प्रकार से बंधनमुक्त होता है। कठिनाई, भेद (सुमिरण) को समझने में है कि शास्त्रोक्त अनुसार भेद क्या हैं? परन्तु उससे भी पूर्व शास्त्र भेद समझने से पहले भेदी तक पहुंचने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

भेद मिले भेदी घर पहुंचे कहन, सुनन से न्यारा।

साधो मूल भेद कोई न्यारा, कोई विरला जाननहारा।।

शास्त्र कह भी रहे है कि जीव भेद तक तब पहुँच पाता है जब उस भेद तक पहुंचाने वाला कोई भेदी मिल जाए। भेद क्या हैं? अर्थात् सुमिरण का भेद क्या है? कोई जाप कर रहा है कोई व्रत तप इत्यादि कर रहा है कोई तीर्थ का मार्ग धारण कर बैठे है तो कोई सदग्रन्थों के पठन को भक्ति का भेद मान रहे है। क्या उपरोक्त सभी कार्य भक्ति है? यदि ये सभी मार्ग भक्ति के होते तो अनुभवी महापुरुष कभी न लिखते कि-

कहन सुनन से न्यारा।

क्योंकि सभी उपरोक्त क्रियाएं सुनने एवं करने में आती है परन्तु भक्ति इन सभी बंधनों से रहित है तभी कबीर साहिब जी ने बड़े ही सरल एवं स्वष्ट शब्दों में समझा भी दिया है-

कहन सुनन की हैं नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा दुल्हन मिल गए फीकी पड़ी बरात।।

भावार्थ भक्ति न तो मुख से रटन करने की चीज़ है और ना ही इन कानों द्वारा जो सुनकर समझा जा सके वो भक्ति है। भक्ति केवल दर्शन है जिस दर्शन को देखने के लिये ये शरीरिक नेत्र असमर्थ है भक्ति दिव्य नयन द्वारा होती है और प्रकाश का संग एवं साक्षात्कार है।

दुल्हा दुल्हन मिल गए फीकी पड़ी बारात।

दिव्य नयन रूपी दुल्हन को जब परम प्रकाश रूपी दुल्हा मिल जाता है तब जाकर वह विवाह सम्पन्न होता है जिस विवाह के लिए यह मनुष्य का शरीर मिला। जब सांसारिक विवाह होते हैं उस विवाह में दुल्हा और दुल्हन इकटठे होते है तो उनके रंग के आगे सारी बारात का रंग लगभग मिट जाता है। ठीक उसी प्रकार जब जीव पर गुरुमहाराज कृपा करते है तो आत्मा का परमात्मा से विवाह करवा देते हैं। यह घटित होते ही जीव आनंद एवं प्रकाश के देश में वास करता है जीव का जब वह परम विवाह होता है तो जितने भी जीव के बंधन एवं रिश्ते होते

हैं वे सब कच्चे एवं फीके प्रतीत होने लगेत हैं।

वियाह होया मेरे बावला गुरुमुखे हरि पाया।
अज्ञान अंधेरा कटिया गुरु ज्ञान प्रचंड कराया।।

गुरुवाणी में भी उस विवाह की घटना का वर्णन बताया गया है कि जीव का विवाह तब हुआ जब जीव गुरुमुख हुआ क्योंकि आज्ञाकारिता के बिना गुरुमुखता असंभव है। जब जीव गुरुमुख होता है तो हरि की प्राप्ति होती है अर्थात् तब ही सोच अपने ही भीतर उस परमसत्स्वरूप की सत्ता में प्रवेश करके परमप्रकाशित स्वरूप को प्राप्त होता है। सारी घटना का श्रेय एवं मार्ग पूर्ण गुरुमहाराज की संगत है। उनकी ऐसी कृपा होते ही जब प्रकाश से मेल हुआ तो सर्वप्रथम उस ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का अंध कार समाप्त हो जाता है। जिस दिन गुरुमहाराज परमकृपा करते हैं उस दिन ही घट बिना अखियन से प्रकाशमय नज़र आता है। हे मनुष्य विवाह! का अर्थ समझे बिना कल्याण नहीं और ना ही मुक्तिध ाम की प्राप्ति होती है। सो हे भगवद् प्रेमी सज्जनों ज्ञान एवं ध्यान के बिना मनुष्य योनि का कोई अर्थ नहीं है। मनुष्य का लक्ष्य उसी के अपने ही भीतर मन फैल नहीं सकता। जब ऐसी गति होती है तो मन का लुप्त होना ही गया, मन का जगत की और से सोना हो गया और सच्चे प्रेम में जागना होता जायेगा। अब मन जैसे ही नाम से भरा वैसे ही सारी की सारी काया आनन्द से भरी। फिर दर्शनों का भी आनन्द आता है। बाहर से भी जो दर्शनों का आनन्द पाया गया जो दर्शनों को पकड़ गया जिसने कभी कर लिए हृदय की आंख खुलवा कर तो वह उस रास्ते में मतवाला बन गया समझो बात को।

भगवान् के नाम की बहुत बड़ी बड़ाई है भगवान् के नाम की बहुत बड़ी महिमा है। भगवान् के नाम के सन्मुख कौन से पाप ठहर सकेंगें। तुलसीदास जी कहते है-

बन्दऊं गुरु पद कंज कृपा सिन्धु ना रूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासू वचन रवि करनि कर।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖
❖ ❖ ❖ ❖
❖ ❖
❖

अनमोल वचन

स्वार्थ ही सारे अपराधों और पापों की जड़ है, एकांत में बैठ कर आत्म परीक्षा करो। जरूर तुम में स्वार्थ की भावना है और इसकी मूल अज्ञानता है..... निस्वार्थ होकर अपने स्वामी के चरणों का आश्रय लो तुम कृतकृत्य हो जाओगे।

श्रद्धा और विश्वास के मार्ग में जो बाधाएं आऐं उन्हें प्रयत्नपूर्वक, बलपूर्वक दूर कर दो। श्रद्धाहीन को कभी ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। श्रद्धा दिखलाने की वस्तु नहीं..... वह तो हृदय का आन्तरिक है।

➢ *God is not who Fulfill demands But he is that who does not let the ambition grown.*

Awakeness is not the opening of eyes But perfect awakeness is loss of existence of mind.

S.Visheshanand Ji

❂ HOUSEHOLDER Or BHIKKHU ❂

Once there was a rebellion against the king which one of his officers sucessfully suppressed. The king was immensely pleased and rewarded him handsomely with costly gifts and a dancing girl to keep him entertained and happy. For several days he was allowed to relax and enjoy himself, which he did with good food and wine, and the dancing girl was so beautiful and danced so gracefully that he eventually fell madly in love with her.

One morning as he was on his way to the river to take a bath, he ran into the Buddha and his disciples going on their almsround and bowed casually as a sign of respect.

The Buddha smiled and said to Ananda, "That officer will come to see me later today, and after I have preached to him, he will attain full enlightenment and then die. That officer will today realize Parinibbana."

The officer, however, had no idea what was in store for him that day. He continued entertaining his friends on the banks of the river, enjoying himself immensely. He was dizzy with delight as his lissom dancer ceaselessly swirled and twirled for their pleasure and amusement. That evening, however, the dancer collapsed from excessive exhaustion and died.

The officer felt so grieved that he went to the Buddha for some comfort and relief, his eyes still wet and swollen from all his weeping. The Buddha told him that the tears he was shedding due to his loss was nothing compared to the amount he had already shed throughout his previous lifetimes. "Isn't it time to stop?" the Buddha asked him. "**Desire is the root of your sorrow. Why not get rid of that and have no more sorrow?**" "Then what can I do ?" Officer said. Budhha said "self realisation."Saying that Budhha told him the methods of meditation. At the end of the Buddha's discourse, the officer attained arahatship. Soon after that, as the Buddha had predicted, he died.

The bhikkhus were curious to know whether the officer was a bhikkhu or a householder since he attained Parinibbana in the clothes of a layman. The Buddha said that he could be called both because it was not by external appearances that one became holy, but by whether one's mind was pure and free from greed, hatred, and delusion.

What Buddha said… : Even though he may be well dressed, if he is calm, free from defilements with his senses controlled, established in the holy way, perfectly pure, and has laid aside enmity toward all beings, he is indeed a holy man, a renunciant, a monk.

❖❖❖❖❖❖

मृत्यु अटल है

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृत्स्य च ।''
तस्माद परिहार्यडर्थे न त्वं शोचितु मर्हसि।।(श)
अर्थात जिसमे जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है और मृत्यु के बाद पुर्नजन्म भी निश्चित है अत: अपने अपरिहार्य कर्तव्य पालन में तुम्हें कोई शक नही करना चाहिए।

विमर्श:—मौत भले ही निश्चित है और सभी इस सत्य से परिचित भी हैं फिर भी मौत का नाम सुनते ही अच्छे अच्छे के छक्के छूट जाते हैं इस शलोक में यही समझाया गया है कि मनुष्य शरीर धारण करता है तो छोड़ना भी जरूरी है ताकि फिर से जन्म ले सके। यह क्रम चलता है रहता है, इसमें शोक करने की बात ही क्या है। कहते हैं **'होनी तो होके रहे'** अर्थात जो उस भगवान ने रचा है वह होकर ही रहेगा **जातस्य हि ध्रुवो मृतु।**

यह बात बिलकुल निश्चित है कि जो होनहार होनी होती है वह होकर ही रहती है। अत: ज्ञानी जन हर हाल में अपने कतृव्य का पालन करते रहते हैं तथा उसकी रजा में राजी रहते हैं इसलिये दुखी होने से बचे रहते हैं। इसके सिवा द:ख से बचने का और कोई उपाय है नहीं। दु:ख सामने आ ही जाए तो हताश और हत्तबुद्धि न होकर विवेक, धैर्य और साहस से काम लेकर दु:ख विपत्ति का सामना करना चाहिए, पुरूषार्थ करत रहना चाहिए। इस मामले महाभारत की एक शिक्षाप्रद कहानी प्रस्तुत है।

यह कहानी सिद्ध करती है कि जो होनी होती है वह होकर रहती है। तुलसी दास जी ने ठीक ही कहा है—

'हुई है वही जो राम रचि राखा।
को करि तरक बढ़ावहि साखा।'

महर्षि व्यास का नाम तो आपने पढ़ा-सुना होगा। इनके नाना थे निषादराज। वे बहुत वृद्ध हो गये थे। वे मरना नहीं चाहते थे। मरना भला कौन चाहता है पर एक न एक दिन मरना तो पड़ता ही है। **मनुष्य मरता आया है, मर रहा है और मरता रहेगा। इसे तो रोका नहीं जा सकता। हां कुत्ते की मौत मरना रोका जा सकता है। मनुष्य ऐसा आचरण करे कि कुत्ते की मौत नहीं, मनुष्य की मौत मर सके। ऐसा हो सकता है पर मरेगा जरूर।**

लेकिन निषादराज मरना नहीं चाहते थे। एक दिन नारदजी से मुलाकात हुई तो उन्होंने उनसे अपने मन की बात कही कि नारद जी! मैं मरना नहीं चाहता। आप का तो देवताओ के यहां आना जाना है। आप मेरी सिफारिश कर दें कि मुझे मारें नहीं।' नारद जी मुस्कराये और बोले-नारायण नारायण, यह काम तो आपके दोहते महर्षि ब्यास ही कर सकते हैं। उनकी तो मुझसे अच्छी पहुंच है देवताओं तक। उनसे कहिए। बात निषादराज को जंची। एक दिन महर्षि ब्यास उनसे मिलने आए तो उन्होंने अपने मन की बात कही। ब्यास जी बोले नानाजी, आप तो जानते हैं कि मृत्यु तो होती ही है, जिसने जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन तो मरना ही पड़ता है'। निषादराज न माने और आग्रह करने लगे तो महर्षि व्यास बोले आप इतना आग्रह कर रहे हैं तो ठीक है, मैं कोशिश करता हूं। यमराज से मुलाकात करके यह बात कह दूंगा कि आप के प्राण न लें। निषादराज व्याग्रतापूर्वक बोले-चलो, मैं भी साथ चलता हूं। यह काम निपटा ही डालो।

व्यास जी बोले चलिए। दोनो यमराज के पास पहुंचे। व्यास जी ने यमराज से कहा तो यमराज बोले ऐसा सम्भव नहीं है पर आप जैसे महर्षि की बात मैं टाल भी नहीं सकता। पर किसी को मारने का काम मृत्यु देवता है। मैं तो उनकी आज्ञा का पालन करता हूं। मैं उनसे कह दूंगा कि वे आपके नानाजी के प्राण लेने का आर्डर न दें।

निषादराज प्रसन्न होकर बोले बड़ी कृपा है आप, थोड़ी कृपा और करें कि उनसे अभी कह दें तो मुझे तसल्ली हो जाएगी। आप बहुत व्यस्त रहते हैं, हो सकता है कि आप भूल जाऐं। यमराज बोले हां, हां अभी लीजिए। मैं अभी कह देता हूं। आइए मेरे साथ।

क्रमश:.....

श्रद्धा भक्ति बढ़ाने वाले वचन

1. जिस माता-पिता का यह विचार हो कि मेरी औलाद सदा सुखी रहे तो उसके अन्दर उनको सत्संग में जाने के संस्कार डालने चाहिए।
2. जिन बातों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं उन बातों में न पड़ो। अपने जीवन का एक-एक श्वास सोच समझ कर खर्च करो।
3. नाम के सुमिरण से ही अन्तकरण शुद्ध हो जाता है, तो उसी से ही शुभ कर्म भी होते हैं। कई लोग नाम का सुमिरण छोड़ कर और शुभ कर्म शुरु कर देते हैं। लेकिन अधूरे रास्ते में ही गिर पड़ते हैं। किसी को अहंकार गिरा देता है तो किसी को कर्म फल की इच्छा आगे बढ़ने से रोक लेती है।
4. यदि कोई कहे कि मालिक भी मिले और कोई कष्ट भी न उठाना पड़े, वह तो खाली बातों से ही पेट भरना चाहता है। जितनी श्रेष्ठ वस्तु होगी उतना ही अधिक मूल्य चुकाना पड़ेगा। झूठे संसार के लिए मनुष्य कितने कष्ट उठाता है। यदि सच्चा मालिक सिर देने से भी मिल जाए तो भी सौदा सस्ता है।

❖❖❖❖❖❖

सत्संग सूचनाएं

1. **17 मई 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव हम्बेवाल, पोस्ट आफिस नंगल निक्कू, तहसील नंगल, ज़िला रोपड़।
   समय – प्रातः 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री इकबाल सिंह जी।
   फोनः – 8427868426
2. **31 मई 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव फिन्तर
   समय – प्रातः 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री खजान सिंह जी।
   फोनः – 07298123621
3. **7 जून 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव झलेड़ तह. सिंहुता ज़िला चम्बा डाक-टू-बनेट
   समय – प्रातः 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री अच्छर सिंह जी
4. **28 जून 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव गुढ़ा (हरनोटा) तहसील बिलावर जिला कठुआ (जम्मू)
   समय – प्रातः 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री मति शकुंतला देवी